वध से हमें क्या लाभ होगा; ऐसा करने से हम किस प्रकार सुखी होंगे? ।।३६।।

तात्पर्य

वैदिक विधान के अनुसार आततायी छः प्रकार के होते हैं—(१) विष देने वाला, (२) घर में अग्नि लगाने वाला, (३) शस्त्र से आक्रमण करने वाला, (४) धन अपहरण करने वाला, (५) दूसरे की भूमि पर अधिकार करने वाला तथा (६) स्त्री का अपहरण करने वाला। ऐसे आततायियों का सामने आते ही तुरन्त वध कर देना चाहिये, इससे पाप नहीं लगता। इस प्रकार आततायी को मारना साधारण मनुष्य के लिए योग्य हो सकता है, पर अर्जुन तो साधारण व्यक्ति नहीं है। वह सन्त-स्वभाव से युक्त है और इस कारण उनके साथ सन्तोचित व्यवहार करना चाहता है। परन्तु ऐसा सन्तपन क्षत्रिय के लिए नहीं। भाव यह है कि प्रशासन के उत्तरदायी अधिकारी को सन्त स्वभाव वाला तो होना चाहिए, पर भीरु नहीं। उदाहरणार्थ, भगवान् राम की साधुता के कारण समस्त जनता उनके राज्य (रामराज्य) में रहने के लिए आतुर थी, पर श्रीराम ने कभी कायरता नहीं दिखाई। अपनी धर्मपत्नी सीता देवी का अपहरण करने वाले आततायी रावण को उन्होंने ऐसा दण्ड दिया, जो आज तक विश्व-इतिहास में अद्वितीय है। परन्तु अर्जुन के संदर्भ में एक बड़ा अन्तर है। यहाँ आततायी हैं उसके अपने पितामह, आचार्य, मित्र, पुत्र, पौत्र आदि। यह देखते हुए अर्जुन ने निश्चय किया है कि उन्हें साधारण आततायी को दिया जाने वाला घोर दण्ड देना उसके उचित नहीं होगा। इसके अतिरिक्त, सत्पुरुषों के लिए क्षमादान का आदेश है और ऐसा शास्त्रीय विधान राजनीतिक अनिवार्यता से अधिक महत्त्व रखता है। इसलिए उसने विचार किया कि राजनीतिक कारणों से स्वजनों का वध करने की अपेक्षा धर्म और सदाचार की दृष्टि से उन्हें क्षमा करना अधिक श्रेष्ठ है। क्षणिक दैहिक सुख के लिए ऐसी हत्या करना उसे श्रेयस्कर नहीं लगा। अन्त में जब राज्य अथवा उससे प्राप्त होने वाला सुख भी नित्य नहीं है, तो स्वजनों का वध करके अपने जीवन एवं शाश्वत् मुक्ति को वह संकट में क्यों डाले? अर्जुन का श्रीकृष्ण को **माधव** अर्थात् 'श्रीपति' सम्बोधित करना भी इसी सन्दर्भ में अर्थसंगत है। उन्हें अर्जुन को ऐसे कार्य में प्रेरित नहीं करना चाहिए, जिसके परिणाम में श्रीहानि हो। परन्तु भक्त के सम्बन्ध में तो कहना ही क्या है, श्रीकृष्ण किसी का भी कभी अनिष्ट नहीं करते।

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम्।।३७।।
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन।।३८।।

यद्यपि=यह माना कि; **एते**=ये; **न**=नहीं; **पश्यन्ति**=देखते हैं; **लोभ**=लोलुपता से; **उपहत**=अभिभूत हुए; **चेतसः**=चित्त वाले; **कुलक्षय**=कुलनाश; **कृतम्**=करने में;